हरे कृष्ण

श्रीमद् भगवत गीता

अध्याय 12

|| भक्तियोग ||

designed by
DigitalWebdia | bhaktiprasad.in

1.

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः || 12.1 ||

bhaktiprasad.in

अर्जुन ने कहा – जो भक्त इस प्रकार निरन्तर आपमें लगे रहकर आप-(सगुण भगवान्-) की उपासना करते हैं और जो अविनाशी निराकार की ही उपासना करते हैं, उनमें से उत्तम योगवेत्ता कौन हैं?

Those devotees who, thus ever devout, worship You and those also who worship the Imperishable and the Unmanifested—which of them are better versed in Yoga?

Updated on May 2024

designed by DigitalWebdia

1.

तात्पर्य

अब तक कृष्ण साकार, निराकार एवं सर्वव्यापकत्व को समझा चुके हैंऔर सभी प्रकार के भक्तों और योगियों का भी वर्णन कर चुके हैं | सामान्यतःअध्यात्मवादियों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है -निर्विशेषवादी तथा सगुणवादी | सगुणवादी भक्त अपनी सारी शक्ति से परमेश्वरकी सेवा करता है | निर्विशेषवादी भी कृष्ण की सेवा करता है, किन्तुप्रत्यक्ष रूप से न करके वह अप्रत्यक्ष ब्रह्म का ध्यान करता है | इस अध्यायमें हम देखेंगे कि परम सत्य की अनुभूति की विभिन्न विधियों में भक्तियोगसर्वोत्कृष्ट है | यदि कोई भगवान् का सान्निध्य चाहता है, तो उसे भक्तिकरनी चाहिए | जो लोग भक्ति के द्वारा परमेश्वर की प्रत्यक्ष सेवा करतेहैं, वे सगुणवादी कहलाते हैं | जो लोग निर्विशेष ब्रह्म का ध्यान करते हैं, वे निर्विशेषवादी कहलाते हैं | यहाँ पर अर्जुन पूछता है कि इन दोनों मेंसे कौन श्रेष्ठ है | यद्यपि परम सत्य के साक्षात्कार के अनेक साधन है, किन्तु इस अध्याय में कृष्ण भक्तियोग को सबों में श्रेष्ठ बताते हैं | यहसर्वाधिक प्रत्यक्ष है और ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करने के लिए सबसेसुगम साधन है |भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय में भगवान् ने बताया है कि जीवभौतिक शरीर नहीं है, वह आध्यात्मिक स्फुलिंग है और परम सत्य परम पूर्ण है |

1.1

तात्पर्य

सातवें अध्याय में उन्होंने जीव को परम पूर्ण का अंश बताते हुए पूर्ण परही ध्यान लगाने की सलाह दी है | पुनः आंठवें अध्याय में कहा है कि जोमनुष्य भौतिक शरीर त्याग करते समय कृष्ण का ध्यान करता है, वह कृष्ण के धामको तुरन्त चला जाता है | यही नहीं, छठे अध्याय के अन्त में भगवान् स्पष्टकहते हैं, कि योगियों में से, जो भी अपने अन्तः-करण में निरन्तर कृष्ण काचिंतन करता है, वही परम सिद्ध माना जाता है | इस प्रकार प्रायः प्रत्येकअध्याय का यही निष्कर्ष है कि मनुष्य को कृष्ण के सगुण रूप के प्रतिअनुरक्त होना चाहिए, क्योंकि वही चरम आत्म-साक्षात्कार है | इतने पर भी ऐसेलोग हैं जो कृष्ण के साकार रूप के प्रति अनुरक्त नहीं होते | वेदृढ़तापूर्वक विलग रहते है यहाँ तक कि भगवद्गीता की टीका करते हुए भी वेअन्य लोगों को कृष्ण से हटाना चाहते हैं, और उनकी सारी भक्ति निर्विशेषब्रह्मज्योति की और मोड़ते हैं | वे परम सत्य के उस निराकार रूप का ही ध्यानकरना श्रेष्ठ मानते हैं, जो इन्द्रियों की पहुँच के परे है और अप्रकट है | इस तरह सचमुच में अध्यात्मवादियों की दो श्रेणियाँ हैं | अब अर्जुन यहनिश्चित कर लेना चाहता है कि कौन-सी विधि सुगम है, और इन दोनों में से कौनसर्वाधिक पूर्ण है | दूसरे शब्दों में, वह अपनी स्थिति स्पष्ट कर लेनाचाहता है, क्योंकि वह कृष्ण के सगुण रूप के प्रति अनुरक्त है | वह निराकारब्रह्म के प्रति आसक्त नहीं है | वह जान लेना चाहता है कि उसकी स्थितिसुरक्षित तो है | निराकार स्वरूप, चाहे इस लोक में हो चाहे भगवान् के परमलोक में हो, ध्यान के लिए समस्या बना रहता है | वास्तव में कोई भी परम सत्यके निराकार रूप का ठीक से चिंतन नहीं कर सकता | अतः अर्जुन कहना चाहता हैकि इस तरह से समय गँवाने से क्या लाभ? अर्जुन को ग्याहरवें अध्याय मेंअनुभव हो चूका है कि कृष्ण के साकार रूप के प्रति आसक्त होना श्रेष्ठ है, क्योंकि इस तरह वह एक ही समय अन्य सारे रूपों को समझ सकता है और कृष्ण केप्रति उसके प्रेम में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं पड़ता | अतः अर्जुनद्वारा कृष्ण से इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न के पूछे जाने से परमसत्य केनिराकार तथा साकार स्वरूपों का अन्तर स्पष्ट हो जाएगा |

2.

श्रीभगवानुवाच |

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते |
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः || 12.2 ||

bhaktiprasad.in

श्रीभगवान् ने कहा - जो लोगअपने मन को मेरे साकार रूप में एकाग्र करते हैं, और अत्यन्त श्रद्धापूर्वकमेरी पूजा करने में सदैव लगे रहते हैं, वे मेरे द्वारा परम सिद्ध मानेजाते हैं |

The Blessed Lord said: He whose mind is fixed on My personal form, always engaged in worshiping Me with great and transcendental faith, is considered by Me to be most perfect.

designed by
DigitalWebdia

2.

तात्पर्य

अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुएकृष्ण स्पष्ट कहते हैं कि जो व्यक्ति उनके साकार रूप में अपने मन को एकाग्रकरता है, और जो अत्यन्त श्रद्धा तथा निष्ठापूर्वक उनको पूजता है, उसे योगमें परम सिद्ध मानना चाहिए | जो इस प्रकार कृष्णभावनाभावित होता है, उसकेलिए कोई भी भौतिक कार्यकलाप नहीं रह जाते, क्योंकि हर कार्य कृष्ण के लिएकिया जाता है | शुद्ध भक्त निरन्तर कार्यरत रहता है - कभी कीर्तन करता है, तो कभी श्रवण करता है,या कृष्ण विषयक कोई पुस्तक पढता है, या कभी-कभीप्रसाद तैयार करता है या बाजार से कृष्ण के लिए कुछ मोल लाता है, या कभीमन्दिर झाड़ता-बुहारता है, तो कभी बर्तन धोता है | वह जो कुछ भी करता है, कृष्ण सम्बन्धी कार्यों के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में एक क्षण भी नहींगँवाता | ऐसा कार्य पूर्ण समाधि कहलाता है |

3-4.

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते |
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् || 12.3 ||

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः |
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः || 12.4 ||

bhaktiprasad.in

परन्तु जो अव्यक्त, जो इन्द्रियों के बोध से परे है, सर्वव्यापक, अकल्पनीय, स्थिर और अचल-परम सत्य की अवैयक्तिक अवधारणा-विभिन्न इन्द्रियों को वश में करके और सभी के प्रति समान भाव रखते हुए पूर्ण रूप से पूजा करते हैं। ऐसे व्यक्ति, जो सभी के कल्याण में लगे हुए हैं, अंत में मुझे प्राप्त करते हैं।

But those who fully worship the unmanifested, that which lies beyond the perception of the senses, the all-pervading, inconceivable, fixed, and immovable-the impersonal conception of the Absolute Truth-by controlling the various senses and being equally disposed to everyone, such persons, engaged in the welfare of all, at last achieve Me.

designed by
DigitalWebdia

3-4.

तात्पर्य

जो लोग सीधे परम भगवान कृष्ण की पूजा नहीं करते हैं, लेकिन जो एक अप्रत्यक्ष प्रक्रिया द्वारा एक ही लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, वे भी अंततः सर्वोच्च लक्ष्य, श्री कृष्ण को प्राप्त करते हैं, जैसा कि कहा गया है, "कई जन्मों के बाद ज्ञान का आदमी शरण लेता है मैं, वासुदेव को जानना ही सब कुछ है।" जब कोई व्यक्ति कई जन्मों के बाद पूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है, तो वह भगवान कृष्ण की शरण में जाता है। यदि कोई इस श्लोक में वर्णित विधि से भगवान के पास जाता है, तो उसे इंद्रियों को वश में करना होगा, सभी की सेवा करनी होगी और सभी प्राणियों के कल्याण में संलग्न होना होगा। यह अनुमान लगाया जाता है कि किसी को भगवान कृष्ण के पास जाना होगा, अन्यथा कोई पूर्ण प्राप्ति नहीं होती है। उसके प्रति पूर्ण समर्पण करने से पहले अक्सर बहुत तपस्या करनी पड़ती है। व्यक्तिगत आत्मा के भीतर परमात्मा को देखने के लिए, देखने, सुनने, चखने, काम करने आदि की कामुक गतिविधियों को रोकना होगा। तब व्यक्ति को समझ में आता है कि परमात्मा हर जगह मौजूद है। यह जान कर मनुष्य किसी जीव से ईर्ष्या नहीं करता - मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं देखता क्योंकि वह केवल आत्मा को देखता है, बाहरी आवरण को नहीं। लेकिन आम आदमी के लिए अवैयक्तिक अनुभूति की यह विधि बहुत कठिन है।

5.

bhaktiprasad.in

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् |
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते || 12.5 ||

जिन लोगों के मन परमेश्वर के अव्यक्त, निराकार स्वरूप के प्रति आसक्त हैं, उनके लिए प्रगति कर पाना अत्यन्त कष्ट प्रद है | देह धारियों के लिए उसक्षेत्र में प्रगति कर पाना सदैव दुष्कर होता है |

For those whose minds are attached to the unmanifested, impersonal feature of the Supreme, advancement is very troublesome. To make progrese in that discipline is always difficult for those who are embodied.

designed by
DigitalWebdia

तात्पर्य

अध्यात्मवादियों का समूह, जो परमेश्वर के अचिन्त्य, अव्यक्त, निराकार स्वरूप के पथ का अनुसरण करता है, ज्ञान-योगी कहलाता है, और जोव्यक्ति भगवान् की भक्ति में रत रहकर पूर्ण कृष्णभावनामृत में रहते हैं, वेभक्ति-योगी कहलाते हैं | यहाँ पर ज्ञान-योग तथा भक्ति-योग में निश्चितअन्तर बताया गया है | ज्ञान-योग का पथ यद्यपि मनुष्य को उसी लक्ष्य तकपहुँचाता है, किन्तु है अत्यन्त कष्टकारक, जब कि भक्ति-योग भगवान् कीप्रत्यक्ष सेवा होने के कारण सुगम है, और देहधारी के लिए स्वाभाविक भी है | जीव अनादि काल से देहधारी है | सैद्धान्तिक रूप से उसके लिए यह समझ पानाअत्यन्त कठिन है कि वह शरीर नहीं है | अतएव भक्ति-योगी कृष्ण के विग्रह कोपूज्य मानता है, क्योंकि उसके मन में कोई शारीरिक बोध रहता है, जिसे इस रूपमें प्रयुक्त किया जा सकता है | निस्सन्देह मन्दिरमें परमेश्वर केस्वरूप की पूजा मूर्तिपूजा नहीं है | वैदिक साहित्य में साक्ष्य मिलता हैकि पूजा सगुण तथा निर्गुण हो सकती है | मन्दिर में विग्रह-पूजा सगुण पूजाहै, क्योंकि भगवान् को भौतिक गुणों के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है | लेकिन भगवान् के स्वरूप को चाहे पत्थर, लकड़ी या तैलचित्र जैसे भौतिक गुणोंद्वारा क्यों न अभिव्यक्त किया जाय वह वास्तव में भौतिक नहीं होता | परमेश्वर की यही परम प्रकृति है | यहाँ पर एक मोटा उदाहरण दियाजा सकता है | सड़कों के किनारे पत्रपेटिकाएँ होती हैं, जिनमें यदि हम अपने पत्रडाल दें, तो वे बिना किसी कठिनाई के अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाते हैं | लेकिन यदि कोई ऐसी पुरानी पेटिका, या उसकी अनुकृति कहीं देखे, जो डाकघरद्वारा स्वीकृत न जीवन

तात्पर्य

तो उससे वही कार्य नहीं हो सकेगा | इसी प्रकारईश्वर ने विग्रहरूप में, जिसे अर्च-विग्रह कहते हैं, अपना प्रमाणिक (वैध)स्वरूप बना रखा है | यह अर्चा-विग्रह परमेश्वर का अवतार होता है | ईश्वर इसी स्वरूप के माध्यम से सेवा स्वीकार करते हैं | भगवान्सर्वशक्तिमान हैं, अतएव वे अर्चा-विग्रह रूपी अपने अवतार से भक्त की सेवाएँस्वीकार कर सकते हैं, जिससे बद्ध जीवन वाले मनुष्य को सुविधा हो | इसप्रकार भक्त को भगवान् के पास सीधे और तुरन्त ही पहुँचने में कोई कठिनाईनहीं होती, लेकिन जो लोग आध्यात्मिक साक्षात्कार के लिए निराकार विधि काअनुसरण करते हैं, उनके लिए यह मार्ग कठिन है | उन्हें उपनिषदों जैसे वैदिकसाहित्य के माध्यम से अव्यक्त स्वरूप को समझना होता है, उन्हें भाषा सीखनीहोती है, इन्द्रियातीत अनुभूतियों को समझना होता है, और इन समस्त विधियोंका ध्यान रखना होता है | यह सब एक सामान्य व्यक्ति के लिए सुगम नहीं होता | कृष्णभावनामृत में भक्तिरत मनुष्य मात्र गुरु के पथप्रदर्शन द्वारा, मात्रअर्चाविग्रह के नियमित नमस्कार द्वारा, मात्र भगवान् की महिमा के श्रवणद्वारा तथा मात्र भगवान् पर चढ़ाये गये उच्छिष्ट भोजन को खाने से भगवान् कोसरलता से समझ लेता है | इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि निर्विशेषवादी व्यर्थही कष्टकारक पथ को ग्रहण करते हैं, जिसमें अन्ततः परम सत्य का साक्षात्कारसंदिग्ध बना रहता है | किन्तु सगुणवादी बिना किसी संकट, कष्ट या कठिनाई केभगवान् के पास पहुँच जाते हैं | ऐसा ही संदर्भ श्रीमद्भागवत में पाया जाताहै | यहाँ यह कहा गया है कि अन्ततः भगवान् की शरण में जाना ही है |

5.2

तात्पर्य

(इस शरणजाने की क्रिया को भक्ति कहते हैं) तो यदि कोई, ब्रह्म क्या है और क्यानहीं है, इसी को समझने का कष्ट आजीवन उठाता रहता है, तो इसका परिणामअत्यन्त कष्टकारक होता है | अतएव यहाँ पर यह उपदेश दिया गया है किआत्म-साक्षात्कार के इस कष्टप्रद मार्ग को ग्रहण नहीं करना चाहिए, क्योंकिअन्तिम फल अनिश्चित रहता है | जीव शाश्वत रूप से व्यष्टि आत्माहै और यदि वह आध्यात्मिक पूर्ण में तदाकार होना चाहता है तो वह अपनी मूलप्रकृति के शाश्वत (सत्) तथा ज्ञेय (चित्) पक्षों का साक्षात्कार तो करसकता है, लेकिन आनन्दमय अंश की प्राप्ति नहीं हो पाती | ऐसा अध्यात्मवादीजो ज्ञानयोग में अत्यन्त विद्वान होता है, किसी भक्त के अनुग्रह सेभक्तियोग को प्राप्त होता है | इस समय निराकारवाद का दीर्घ अभ्यास कष्ट काकारण बन जाता है, क्योंकि वह उस विचार को त्याग नहीं पाता | अतएव देहधारीजीव, अभ्यास के समय या साक्षात्कार के समय, अव्यक्त की प्राप्ति में सदैवकठिनाई में पड़ जाता है | प्रत्येक जीव अंशतः स्वतन्त्र है और उसे यह अच्छीतरह समझ लेना चाहिए कि वह अव्यक्त अनुभूति उसके आध्यात्मिक आनन्दमय आत्म (स्व) की प्रकृति के विरुद्ध है | मनुष्य को चाहिए कि इस विधि को न अपनाये | प्रत्येक जीव के लिए कृष्णचेतना की विधि श्रेष्ठ मार्ग है, जिसमें भक्तिमें पूरी तरह व्यस्त रहना होता है | यदि कोई भक्ति की अपेक्षा करना चाहताहै, तो नास्तिक होने का संकट रहता है | अतएव अव्यक्त विषयक एकाग्रता कीविधि को, जो इन्द्रियों की पहुँच के परे है, जैसा कि इस श्लोक में पहले कहाजा चुका है, इस युग में प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए | भगवान् कृष्ण नेइसका उपदेश नहीं दिया |

6-7.

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः |
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते || 12.6 ||

तेषाम हं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् |
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् || 12.7 ||

जो अपने सारे कार्यों को मुझमें अर्पित करकेतथा अविचलित भाव से मेरी भक्ति करते हुए मेरी पूजा करते हैं और अपनेचित्तों को मुझ पर स्थिर करके निरन्तर मेरा ध्यान करते हैं, उनके लिए हेपार्थ! मैं जन्म-मृत्यु के सागर से शीघ्र उद्धार करने वाला हूँ |

For one who worships Me, giving up all his activities unto Me and being devoted to Me without deviation, engaged in devotional service and always meditating upon Me, who has fixed his mind upon Me, O son of Parthā, for him I am the swift deliverer from the ocean of birth and death.

bhaktiprasad.in

designed by
DigitalWebdia

तात्पर्य

यहाँ पर स्पष्ट कहा गया है कि भक्तजन अत्यन्त भाग्यशाली हैं किभगवान् उनका इस भवसागर से तुरन्त ही उद्धार कर देते हैं | शुद्ध भक्ति करनेपर मनुष्य को इसकी अनुभूति होने लगती है कि ईश्वर महान हैं और जीवात्माउनके अधीन है | उसका कर्त्तव्य है कि वह भगवान् की सेवा करे और यदि वह ऐसानहीं करता, तो उसे माया की सेवा करनी होगी | जैसा पहले कहा जाचुका है कि केवल भक्ति से परमेश्वर को जाना जा सकता है | अतएव मनुष्य कोचाहिए कि वह पूर्ण रूप से भक्त बने | भगवान् को प्राप्त करने के लिए वहअपने मन को कृष्ण में पूर्णतया एकाग्र करे | वह कृष्ण के लिए ही कर्म करे | चाहे वह जो भी कर्म करे लेकिन वह कर्म केवल कृष्ण के लिए होना चाहिए | भक्ति का यही आदर्श है | भक्त भगवान् को प्रसन्न करने के अतिरिक्त और कुछभी नहीं चाहता | उसके जीवन का उद्देश्य कृष्ण को प्रसन्न करना होता है औरकृष्ण की तुष्टि के लिए वह सब कुछ उत्सर्ग कर सकता है जिस प्रकार अर्जुन नेकुरुक्षेत्र के युद्ध में किया था | यह विधि अत्यन्त सरल है | मनुष्य अपनेकार्य में लगा रह कर हरे कृष्ण महामन्त्र का कीर्तन कर सकता है | ऐसेदिव्य कीर्तन से भक्त भगवान् के प्रति आकृष्ट हो जाता है | यहाँपर भगवान् वचन देते हैं कि वे ऐसे शुद्ध भक्त को तुरन्त ही भवसागर सेउद्धार कर देंगे | जो योगाभ्यास में बढ़े चढ़े हैं, वे योग द्वारा अपनी आत्माको इच्छानुसार किसी भी लोक में ले जा सकते हैं और अन्य लोग इस अवसर कोविभिन्न प्रकार से उपयोग में लाते हैं, लेकिन जहाँ तक भक्त का सम्बन्ध है, उसके लिए यहाँ यह स्पष्ट कहा गया है कि स्वयं भगवान् ही उसे ले जाते हैं | भक्त को वैकुण्ठ में जाने के पूर्व अनुभवी बनने के लिए प्रतीक्षा नहीं करनीपड़ती | वराह पुराण में एक श्लोक आया है -

तात्पर्य

नयामि परमं स्थानमर्चिरादिगतिं विना | गरुडस्कन्धमारोप्य यथेच्छमनिवारितः || तात्पर्य यह है कि वैकुण्ठलोक में आत्मा को ले जाने के लिए भक्त कोअष्टांगयोग साधने की आवश्यकता नहीं है | इसका भार भगवान् स्वयं अपने ऊपरलेते हैं | वे यहाँ पर स्पष्ट कर रहे हैं कि वे स्वयं ही उद्धारक बनते हैं | बालक अपने माता-पिता द्वारा अपने आप रक्षित होता रहता है, जिससे उसकीस्थिति सुरक्षित रहती है | इसी प्रकार भक्त को योगाभ्यास द्वारा अन्य लोकोंमें जाने के लिए प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं होती, अपितु भगवान् अपनेअनुग्रहवश स्वयं ही अपने पक्षीवाहन गरुड़ पर सवार होकर तुरन्त आते हैं औरभक्त को भवसागर से उबार लेते हैं | कोई कितना ही कुशल तैराक क्यों न हो, औरकितना ही प्रयत्न क्यों न करे, किन्तु समुद्र में गिर जाने पर वह अपने कोनहीं बचा सकता | किन्तु यदि कोई आकर उसे जल से बाहर निकाल ले, तो वह आसानीसे बच जाता है | इसी प्रकार भगवान् भक्त को इस भवसागर से निकाल लेते हैं | मनुष्य को केवल कृष्णभावनामृत की सुगम विधि का अभ्यास करना होता है , औरअपने आपको अनन्य भक्तिमें प्रवृत्त करना होता है | किसी भी बुद्धिमानव्यक्ति को चाहिए कि वह अन्य समस्त मार्गों की अपेक्षा भक्तियोग को चुने | नारायणीय में इसकी पुष्टि इस प्रकार हुई है- या वै साधनसम्पत्तिः पुरुषार्थचतुष्टये | तया विना तदाप्नोति नरो नारायणाश्रयः || इस श्लोक का भावार्थ यह है कि मनुष्य को चाहिए कि वह न तो सकाम कर्म कीविभिन्न विधियों में उलझे, न ही कोरे चिन्तन से ज्ञान का अनुशीलन करे | जोपरम भगवान् की भक्ति में लीन है, वह उन समस्त लक्ष्यों को प्राप्त करता हैजो अन्य योग विधियों, चिन्तन, अनुष्ठानों, यज्ञों, दानपुण्यों आदि सेप्राप्त होने वाले हैं | भक्ति का यही विशेष वरदान है |

तात्पर्य

केवलकृष्ण के पवित्र नाम - हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे, हरेराम, हरे राम, राम राम, हरे हरे - का कीर्तन करने से ही भक्त सरलता तथासुखपूर्वक परम धाम को पहुँच सकता है | लेकिन इस धाम को अन्य किसी धार्मिकविधि द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता | भगवद्गीता का निष्कर्ष अठारहवें अध्याय में इस प्रकार व्यक्त हुआ है -

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज |
अहम् त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ||

आत्म-साक्षात्कार की अन्य समस्त विधियों को त्याग कर केवल कृष्णभावनामृतमें भक्ति सम्पन्न करनी चाहिए | इससे जीवन की चरम सिद्धि प्राप्त की जासकती है | मनुष्य को अपने गत जीवन के पाप कर्मों पर विचार करने की आवश्यकतानहीं रह जाती, क्योंकि उसका उत्तरदायित्व भगवान् अपने ऊपर ले लेते हैं | अतएव मनुष्य को व्यर्थ ही आध्यात्मिक अनुभूति में अपने उद्धार का प्रयत्ननहीं करना चाहिए | प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह परम शक्तिमान ईश्वरकृष्ण की शरण ग्रहण करे | यही जीवन की सर्वोच्च सिद्धि है |

8.

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेश्य |
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः|| 12.8 ||

bhaktiprasad.in

मुझ भगवान् में अपने चित्त को स्थिर करो और अपनी सारी बुद्धि मुझमें लगाओ | इस प्रकार तुम निस्सन्देह मुझमें सदैव वास करोगे |

Just fix your mind upon Me, the Supreme Personality of Godhead, and engage all your intelligence in Me. Thus you will live in Me always, without a doubt.

designed by
DigitalWebdia

8.

तात्पर्य

जो भगवान् कृष्ण की भक्ति में रत रहता है, उसका परमेश्वर के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है | अतएव इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं कि प्रारम्भ से ही उसकी स्थिति दिव्य होती है | भक्त कभी भौतिक धरातल पर नहीं रहता - वह सदैव कृष्ण में वास करता है | भगवान् का पवित्र नाम तथा भगवान् अभिन्न हैं | अतः जब भक्त हरे कृष्ण कीर्तन करता है, तो कृष्ण तथा उनकी अन्तरंगाशक्ति भक्त की जिह्वा पर नाचते रहते हैं | जब वह कृष्ण को भोग चढ़ाता है, जो कृष्ण प्रत्यक्ष रूप से ग्रहण करते हैं और इस तरह इस उच्छिष्ट (जूठन) को खाकर कृष्णमाय हो जाता है | जो इस प्रकार सेवा में ही नहीं लगता, वह नहीं समझ पाता कि यह सब कैसे होता है, यद्यपि भगवद्गीता तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में इसी विधि की संस्तुति की गई है |

9.

bhaktiprasad.in

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् |
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय || 12.9 ||

हे अर्जुन, हे धनञ्जय! यदि तुम अपने चित्त को अविचल भाव से मुझ पर स्थिर नहीं कर सकते, तो तुम भक्तियोग के विधि-विधानों का पालन करो | इस प्रकार तुम मुझे प्राप्त करने की चाह उत्पन्न करो |

My dear Arjuna, O winner of wealth, if you cannot fix your mind upon Me without deviation, then follow the regulated principles of bhakti-yoga In this way you will develop a desire to attain to Me.

designed by
DigitalWebdia

9.

तात्पर्य

इस श्लोक में भक्तियोग की दो पृथक्-पृथक् विधियाँ बताई गई हैं | पहली विधि उस व्यक्ति पर लागू होती है, जिसने दिव्य प्रेम द्वारा भगवान् कृष्ण के प्रति वास्तविक आसक्ति उत्पन्न कर ली है | दूसरी विधि उसके लिए है जिसने इस प्रकार से भगवान् कृष्ण के प्रति आसक्ति नहीं उत्पन्न की | इस द्वितीय श्रेणी के लिए नाना प्रकार के विधि-विधान हैं, जिनका पालन करके मनुष्य अन्ततः कृष्ण-आसक्ति अवस्था को प्राप्त हो सकता है | भक्तियोग इन्द्रियों का परिष्कार (संस्कार) है | संसार में इस समय सारी इन्द्रियाँ सदा अशुद्ध हैं, क्योंकि वे इन्द्रियतृप्ति में लगी हुई हैं | लेकिन भक्तियोग के अभ्यास से ये इन्द्रियाँ शुद्ध की जा सकती हैं, और शुद्ध हो जाने पर वे परमेश्वर के सीधे सम्पर्क में आ जाती हैं | इस संसार में रहते हुए मैं किसी अन्य स्वामी की सेवा में रत हो सकता हूँ, लेकिन मैं सचमुच उसकी प्रेमपूर्ण सेवा नहीं करता | मैं केवल धन के लिए सेवा करता हूँ | और वह स्वामी भी मुझसे प्रेम नहीं करता, वह मुझसे सेवा कराता है और मुझे धन देता है | अतएव प्रेम का प्रश्न ही नहीं उठता | लेकिन आध्यात्मिक जीवन के लिए मनष्य को प्रेम की शुद्ध अवस्था तक ऊपर उठना होता है | यह प्रेम अवस्था इन्हीं इन्द्रियों के द्वारा भक्ति के अभ्यास से प्राप्त की जा सकती है| यह ईश्वरप्रेम अभी प्रत्येक हृदय में सुप्त अवस्था में है | वहाँ पर यह ईश्वरप्रेम अनेक रूपों में प्रकट होता है, लेकिन भौतिक संगति से दूषित हो जाता है | अतएव उस भौतिक संगति से हृदय को विमल बनाना होता है और उस सुप्त स्वाभाविक कृष्ण-प्रेम को जागृत करना होता है | यही भक्तियोग की पुरु विधि है |

9.1

तात्पर्य

भक्तियोग के विधि-विधानों का अभ्यास करने के लिए मनुष्य को किसी सुविज्ञ गुरु के मार्गदर्शन में कतिपय नियमों का पालन करना होता है - यथा ब्रह्ममुहूर्त में जागना, स्नान करना, मन्दिर में जाना तथा प्रार्थना करना एवं हरे कृष्णकीर्तन करना, फिर अर्चा-विग्रह पर चढ़ाने के लिए फूल चुनना, अर्चा-विग्रह पर भोग चढ़ाने के लिए भोजन बनाना,प्रसाद ग्रहण करना अदि | ऐसे अनेक विधि-विधान हैं, जिनका पलान आवश्यक है | मनुष्य को शुद्ध भक्तों से नियमित रूप से भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत सुनना चाहिए | इस अध्याय से कोई भी ईश्वर-प्रेम के स्तर तक उठ सकता है और तब भगवद्धाम तक उसका पहुँचना ध्रुव है | विधि-विधानों के अन्तर्गत गुरु के आदेशानुसार भक्तियोग का यह अभ्यास करके मनुष्य निश्चय ही भगवत्प्रेम की अवस्था को प्राप्त हो सकेगा |

10.

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव |
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि || 12.10 ||

bhaktiprasad.in

यदि तुम भक्तियोग के विधि-विधानों का भी अभ्यास नहीं कर सकते, तो मेरे लिए कर्म करने का प्रयत्न करो, क्योंकि मेरे लिए कर्म करने से तुम पूर्ण अवस्था (सिद्धि) को प्राप्त होगे |

If you cannot practice the regulations of bhakti-yoga, then just try to work for Me, because by working for Me you will come to the perfect stage.

designed by
DigitalWebdia

तात्पर्य

यदि कोई गुरु के निर्देशानुसार भक्तियोग के विधि-विधानों का अभ्यास नहीं भी कर पाता, तो भी परमेश्वर के लिए कर्म करके उसे पूर्णावस्था प्रदान कराई जा सकती है | यह कर्म किस प्रकार किया जाय, इसकी व्याख्या ग्याहरवें अध्याय के पचपनवें श्लोक में पहले ही की जा चुकी है | मनुष्य में कृष्णभावनामृत के प्रचार हेतु सहानुभूति होनी चाहिए | ऐसे अनेक भक्त हैं जो कृष्णभावनामृत के प्रचार कार्य में लगे हैं | उन्हें सहायता की आवश्यकता है | अतः भले ही कोई भक्तियोग के विधि-विधानों का प्रत्यक्ष रूप से अभ्यास न कर सके, उसे ऐसे कार्य में सहायता देने का प्रयत्न करना चाहिए | प्रत्येक प्रकार के प्रयास में भूमि, पूँजी, संगठन तथा श्रम की आवश्यकता होती है | जिस प्रकार किसी भी व्यापार में रहने के लिए स्थान, उपयोग के लिए कुछ पूँजी, कुछ श्रम तथा विस्तार करने के लिए कुछ संगठन चाहिए, उसी प्रकार कृष्णसेवा के लिए भी इनकी आवश्यकता होती है | अन्तर केवल इतना ही होता है कि भौतिकवाद में मनुष्य इन्द्रियतृप्ति के लिए सारा कार्य करता है, लेकिन यही कार्य कृष्ण की तुष्टि के लिए किया जा सकता है | यही दिव्य कार्य है | यदि किसी के पास पर्याप्त धन है, तो वह कृष्णभावनामृत के प्रचार के लिए कोई कार्यालय अथवा मन्दिर निर्मित कराने में सहायता कर सकता है अथवा वह प्रकाशन में सहायता पहुँचा सकता है | कर्म के विविध क्षेत्र हैं और मनुष्य को ऐसे कर्मों में रूचि लेनी चाहिए | यदि कोई अपने कर्मों के फल को नहीं त्याग सकता, तो कम से कम उसका कुछ प्रतिशत कृष्णभावनामृत के प्रचार में तो लगा ही सकता है | इस प्रकार कृष्णभावनामृत की दिशा में स्वेच्छा से सेवा करने से व्यक्ति भगवत्प्रेम की उच्चतर अवस्था को प्राप्त हो सकेगा, जहाँ उसे पूर्णता प्राप्त हो सकेगी |

11.

bhaktiprasad.in

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः |
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् || 12.11 ||

किन्तु यदि तुम मेरे इस भावनामृत में कर्म करने में असमर्थ हो तो तुम अपने कर्म के समस्त फलों को त्याग कर कर्म करने का तथा आत्म-स्थित होने का प्रयत्न करो |

If, however, you are unable to work in this consciousness, then try to act giving up all results of your work and try to be self-situated.

designed by
DigitalWebdia

तात्पर्य

हो सकता है कि कोई व्यक्ति सामाजिक, पारिवारिक या धार्मिक कारणों से या किसी अन्य अवरोधों के कारण कृष्णभावनामृत के कार्यकलापों के प्रति सहानुभूति तक दिखा पाने में अक्षम हो | यदि वह अपने को प्रत्यक्ष रूप से इन कार्यकलापों के प्रति जोड़ ले तो हो सकता है कि पारिवारिक सदस्य विरोध करें, या अन्य कठिनाइयाँ उठ खड़ी हों | जिस व्यक्ति के साथ ऐसी समस्याएँ लगी हों, उसे यह सलाह दी जाती है कि वह अपने कार्यकलापों के संचित फल को किसी शुभ कार्य में लगा दे | ऐसी विधियाँ वैदिक नियमों में वर्णित हैं | ऐसे अनेक यज्ञों तथा पुण्य कार्यों अथवा विशेष कार्यों के वर्णन हुए हैं, जिनमें अपने पिछले कार्यों के फलों को प्रयुक्त किया जा सकता है | इससे मनुष्य धीरे-धीरे ज्ञान के स्तर तक उठता है | ऐसा भी पाया गया है कि कृष्णभावनामृत के कार्यकलापों में रूचि न रहने पर भी जब मनुष्य किसी अस्पताल या किस सामाजिक संस्था को दान देता है, तो वह अपने कार्यकलापों की गाढ़ी कमाई का परित्याग करता है | यहाँ पर इसकी भी संस्तुति की गई है, क्योंकि अपने कार्यकलापों के फल के परित्याग के अभ्यास से मनुष्य क्रमशः अपने मन को स्वच्छ बनाता है, और उस विमल मनःस्थिति में वह कृष्णभावनामृत को समझने में समर्थ होता है | कृष्णभावनामृत किसी अन्य अनुभव पर आश्रित नहीं होता, क्योंकि कृष्णभावनामृत स्वयं मन को विमल बनाने वाला है, किन्तु यदि कृष्णभावनामृत को स्वीकार करने में किसी प्रकार का अवरोध हो, तो मनुष्य को चाहिए कि अपने कर्मफल का परित्याग करने का प्रयत्न करे | ऐसी दशा में समाज सेवा, समुदाय सेवा, राष्ट्रीय सेवा, देश के लिए उत्सर्ग आदि कार्य स्वीकार किये जा सकते हैं, जिससे एक दिन मनुष्य भगवान् की शुद्ध भक्ति को प्राप्त हो सके | भगवद्गीता में ही (१८.४६) कहा गया है - यतः प्रवृत्तिर्भूतानाम् - यदि कोई परम कारण के लिए उत्सर्ग करना चाहे, तो भले ही वह यह न जाने कि परम कारण कृष्ण हैं, फिर भी वह क्रमशः यज्ञ विधि से समझ जाएगा कि परम कारण कृष्ण ही है |

12.

bhaktiprasad.in

श्रेयो हि ज्ञानभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते |
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् || 12.12 ||

यदि तुम यह अभ्यास नहीं कर सकते, तो ज्ञान के अनुशीलन में लग जाओ | लेकिन ज्ञान से श्रेष्ठ ध्यान है और ध्यान से भी श्रेष्ठ कर्म फलों का परित्याग क्योंकि ऐसे त्याग से मनुष्य को मनःशान्ति प्राप्त हो सकती है |

If you cannot take to this practice, then engage yourself in the cultivation of knowledge. Better than knowledge, however, is meditation, and better than meditation is renunciation of the fruits of action, for by such renunciation one can attain peace of mind.

designed by
DigitalWebdia

तात्पर्य

जैसा कि पिछले श्लोकों में बताया गया है, भक्ति के दो प्रकार हैं - विधि-विधानों से पूर्ण तथा भगवत्प्रेम की आसक्ति से पूर्ण | किन्तु जो लोग कृष्णभावनामृत के नियमों का पालन नहीं कर सकते, उनके लिए ज्ञान का अनुशीलन करना श्रेष्ठ है, क्योंकि ज्ञान से मनुष्य अपनी वास्तविक स्थिति को समझने में समर्थ होता है | यही ज्ञान क्रमशः ध्यान तक पहुँचाने वाला है, और ध्यान से क्रमशः परमेश्वर को समझा जा सकता है | ऐसी भी विधियाँ हैं जिनमे मनुष्य अपने को परब्रह्म मान बैठता है, और यदि कोई भक्ति करने में असमर्थ है, तो ऐसा ध्यान भी अच्छा है | यदि कोई इस प्रकार से ध्यान नहीं कर सकता, तो वैदिक साहित्य में ब्राह्मणों, क्षत्रियों, विषयों तथा शूद्रों के लिए कतिपय कर्तव्यों का आदेश है, जिसे हम भगवद्गीता के अंतिम अध्याय में देखेंगे | लेकिन प्रत्येक दशा में मनुष्य को अपने कर्मपजल का त्याग करना होगा - जिसका अर्थ है कर्मफल को किसी अच्छे कार्य में लगाना | संक्षेपतः, सर्वोच्च लक्ष्य, भगवान् तक पहुँचने की दो विधियाँ है - एक विधि है क्रमिक विकास की और दूसरी प्रत्यक्ष विधि | कृष्णभावनामृत में भक्ति प्रत्यक्ष विधि है | अन्य विधि में कर्मों के फल का त्याग करना होता है, तभी मनुष्य ज्ञान की अवस्था को प्राप्त होता है | उसके बाद ध्यान की अवस्था तथा फिर परमात्मा के बोध की अवस्था और अन्त में भगवान् की अवस्था आ जाती है | मनुष्य चाहे तो एक एक पग करके आगे बढ़ने की विधि अपना सकता है, या प्रत्यक्ष विधि ग्रहण कर सकता है | लेकिन प्रत्यक्ष विधि हर एक के लिए संभव नहीं है | अतः अप्रत्यक्ष विधि भी अच्छी है | यह तो उन लोगों के लिए है, जो इस अवस्था को प्राप्त नहीं हैं | उनके लिए तो त्याग, ज्ञान, ध्यान तथा परमात्मा एवं ब्रह्म की अनुभूति ही पालनीय है | लेकिन जहाँ तक भगवद्गीता का सम्बन्ध है, उसमें तो प्रत्यक्ष विधि पर ही बल है | प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्यक्ष विधि ग्रहण करने तथा भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में जाने की सलाह दी जाती है |

13-14.

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च |
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी || 12.13 ||
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः |
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः || 12.14 ||

bhaktiprasad.in

जो किसी से द्वेष नहीं करता, लेकिन सभी जीवों का दयालु मित्र है, जो अपने को स्वामी नहीं मानता और मिथ्या अहंकार से मुक्त है, जो सुख-दुख में समभाव रहता है, सहिष्णु है, सदैव आत्मतुष्ट रहता है, आत्मसंयमी है तथा जो निश्चय के साथ मुझमें मन तथा बुद्धि को स्थिर करके भक्ति में लगा रहता है, ऐसा भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है |

One who is not envious but who is a kind friend to all living entities, who does not think himself a proprietor, who is free from false ego and equal both in happiness and distress, who is always satisfied and engaged in devotional service with determination and whose mind and intelligence are in agreement with Me-he is very dear to Me.

designed by
DigitalWebdia

13-14.

तात्पर्य

शुद्ध भक्ति पर पुनः आकर भगवान् इन दोनों श्लोकों में शुद्ध भक्त के दिव्य गुणों का वर्णन कर रहे हैं | शुद्ध भक्त किसी भी परिस्थिति में विचलित नहीं होता, न ही वह किसी के प्रति ईर्ष्यालु होता है | न वह अपने शत्रु का शत्रु बनता है | वह तो सोचता है 'यह व्यक्ति मेरे विगत दुष्कर्मों के कारण मेरा शत्रु बना हुआ है, अतएव विरोध करने की अपेक्षा कष्ट सहना अच्छा है |' श्रीमद्भागवतम् में (१०.१४.८) कहा गया है – तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् | जब भी कोई भक्त मुसीबत में पड़ता है, तो वह सोचता है कि भगवान् की मेरे ऊपर कृपा ही है | मुझे विगत दुष्कर्मों के अनुसार इससे अधिक कष्ट भोगना चाहिए था | यह तो भगवत्कृपा है कि मुझे मिलने वाला पूरा दण्ड नहीं मिल रहा है | भगवत्कृपा से थोड़ा ही दण्ड मिल रहा है | अतएव अनेक कष्टपूर्ण परिस्थितियों में भी वह सदैव शान्त तथा धीर बना रहता है | भक्त सदैव प्रत्येक प्राणी पर, यहाँ तक कि अपने शत्रु पर भी, दयालु होता है | निर्मम का अर्थ यह है कि भक्त शारीरिक कष्टों को प्रधानता नहीं प्रदान करता, क्योंकि वह अच्छी तरह जानता है कि वह भौतिक शरीर नहीं है | वह अपने को शरीर नहीं मानता है, अतएव वह मिथ्या अहंकार के बोध से मुक्त रहता है, और सुख तथा दुख में समभाव रखता है | वह सहिष्णु होता है और भगवत्कृपा से जो कुछ प्राप्त होता है, उसी से सन्तुष्ट रहता है | वह ऐसी वस्तु को प्राप्त करने का प्रयास नहीं करता जो कठिनाई से मिले | अतएव वह सदैव प्रसन्नचित्त रहता है | वह पूर्णयोगी होता है, क्योंकि वह अपने गुरु के आदेशों पर अटल रहता है, और चूँकि उसकी इन्द्रियाँ वश में रहती हैं, अतः वह दृढ़निश्चय होता है | वह झूठे तर्कों से विचलित नहीं होता, क्योंकि कोई उसे भक्ति के दृढ़संकल्प से हटा नहीं सकता | वह पूर्णतया अवगत रहता है कि कृष्ण उसके शाश्वत प्रभु हैं, अतएव कोई भी उसे विचलित नहीं कर सकता | इन समस्त गुणों के फलस्वरूप वह अपने मन तथा बुद्धि को पूर्णतया परमेश्वर पर स्थिर करने में समर्थ होता है | भक्ति का ऐसा आदर्श अत्यन्त दुर्लभ है, लेकिन भक्त भक्ति के विधि-विधानों का पालन करते हुए उसी अवस्था में स्थित रहता है और फिर भगवान् कहते हैं कि ऐसा भक्त उन्हें अति प्रिय है, क्योंकि भगवान् उसकी कृष्णभावना से युक्त कार्यकलापों से सदैव प्रसन्न रहते हैं |

15.

bhaktiprasad.in

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः |
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः || 12.15 ||

जिससे किसी को कष्ट नहीं पहुँचता तथा जो अन्य किसी के द्वारा विचलित नहीं किया जाता, जो सुख-दुख में, भय तथा चिन्ता में समभाव रहता है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है |

He for whom no one is put into difficulty and who is not dirturbed by anxiety, who is steady in happiness and distress, is very dear to Me.

designed by
DigitalWebdia

तात्पर्य

इस श्लोक में भक्त के कुछ अन्य गुणों का वर्णन हुआ है | ऐसे भक्त द्वारा कोई व्यक्ति कष्ट, चिन्ता, भय या असन्तोष को प्राप्त नहीं होता | चूँकि भक्त सबों पर दयालु होता है, अतएव वह ऐसा कार्य नहीं करता, जिससे किसी को चिन्ता हो | साथ ही, यदि अन्य लोग भक्त को चिन्ता में डालना चाहते हैं, तो वह विचलित नहीं होता | वास्तव में सदैव कृष्णभावनामृत में लीन रहने तथा भक्ति में रत रहने के कारण ही ऐसे भौतिक उपद्रव भक्त को विचलित नहीं कर पाते | सामान्य रूप से विषयी व्यक्ति अपने शरीर तथा इन्द्रियतृप्ति के लिए किसी वस्तु को पाकर अत्यन्त प्रसन्न होता है, लेकिन जब वह देखता है कि अन्यों के पास इन्द्रियतृप्ति के लिए ऐसी वस्तु है, जो उसके पास नहीं है, तो वह दुख तथा ईर्ष्या से पूर्ण हो जाता है | जब वह अपने शत्रु से बदले की शंका करता है, तो वह भयभीत रहता है, और जब वह कुछ भी करने में सफल नहीं होता, तो निराश हो जाता है | ऐसा भक्त, जो इन समस्त उपद्रवों से परे होता है, कृष्ण को अत्यन्त प्रिय होता है |

16.

bhaktiprasad.in

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः |
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः || 12.16 ||

मेरा ऐसा भक्त जो सामान्य कार्य-कलापों पर आश्रित नहीं है, जो शुद्ध है, दक्ष है, चिन्तारहित है, समस्त कष्टों से रहित है और किसी फल के लिए प्रयत्नशील नहीं रहता, मुझे अतिशय प्रिय है |

A devotee who is not dependant on the ordinary course of activities, who is pure, expert, without cares, free from all pains, and who does not strive for some result, is very dear to Me.

designed by
DigitalWebdia

तात्पर्य

भक्त को धन दिया जा सकता है, किन्तु उसे धन अर्जित करने के लिए संघर्ष नहीं करना चाहिए | भगवत्कृपा से यदि उसे स्वयं धन की प्राप्ति हो, तो वह उद्विग्न नहीं होता | स्वाभाविक है कि भक्त दिनभर में दो बार स्नान करता है और भक्ति के लिए प्रातःकाल जल्दी उठता है | इस प्रकार वह बाहर तथा भीतर से स्वच्छ रहता है | भक्त सदैव दक्ष होता है, क्योंकि वह जीवन के समस्त कार्यकलापों के सार को जानता है और प्रामाणिक शास्त्रों में दृढ़विश्वास रखता है | भक्त कभी किसी दल में भाग नहीं लेता, अतएव वह चिन्तामुक्त रहता है | समस्त उपाधियों से मुक्त होने के कारण कभी व्यथित नहीं होता, वह जानता है कि उसका शरीर एक उपाधि है, अतएव शारीरिक कष्टों के आने पर वह मुक्त रहता है | शुद्ध भक्त कभी भी ऐसी वस्तु के लिए प्रयास नहीं करता, जो भक्ति के नियमों के प्रतिकूल हो | उदाहरणार्थ, किसी विशाल भवन को बनवाने में काफी शक्ति लगती है, अतएव वह कभी ऐसे कार्य में हाथ नहीं लगाता, जिससे उसकी भक्ति में प्रगति न होती हो | वह भगवान् के लिए मंदिर का निर्माण करा सकता है और उसके लिए वह सभी प्रकार की चिन्ताएँ उठा सकता है, लेकिन वह अपने परिवार वालों के लिए बड़ा सा मकान नहीं बनाता |

17.

bhaktiprasad.in

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति |
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमानयः स मे प्रियः || 12.17 ||

जो न कभी हर्षित होता है, न शोक करता है, जो न पछताता है, न इच्छा करता है, तथा शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार की वस्तुओं का परित्याग कर देता है, ऐसा भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है |

One who neither grasps pleasure or grief, who neither laments nor desires, and who renounces both auspicious and inauspicious things, is very dear to Me.

designed by
DigitalWebdia

17.

तात्पर्य

शुद्ध भक्त भौतिक लाभ से न तो हर्षित होता है और न हानि से दुखी होता है, वह पुत्र या शिष्य की प्राप्ति के लिए न तो उत्सुक रहता है, न ही उनके न मिलने पर दुखी होता है | वह अपनी किसी प्रिय वस्तु के खो जाने पर उसके लिए पछताता नहीं | इसी प्रकार यदि उसे अभीप्सित की प्राप्ति नहीं हो पाती तो वह दुखी नहीं होता | वह समस्त प्रकार के शुभ, अशुभ तथा पापकर्मों से सदैव परे रहता है | वह परमेश्वर की प्रसन्नता के लिए बड़ी से बड़ी विपत्ति सहने को तैयार रहता है | भक्ति के पालन में उसके लिए कुछ भी बाधक नहीं बनता | ऐसा भक्त कृष्ण को अतिशय प्रिय होता है |

18-19.

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः |
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः || 12.18 ||
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् |
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः || 12.19 ||

bhaktiprasad.in

जो मित्रों तथा शत्रुओं के लिए समान है, जो मान तथा अपमान, शीत तथा गर्मी, सुख तथा दुख, यश तथा अपयश में समभाव रखता है, जो दूषित संगति से सदैव मुक्त रहता है, जो सदैव मौन और किसी भी वस्तु से संतुष्ट रहता है, जो किसी प्रकार के घर-बार की परवाह नहीं करता, जो ज्ञान में दृढ़ है और जो भक्ति में संलग्न है - ऐसा पुरुष मुझे अत्यन्त प्रिय है |

One who is equal to friends and enemies, who is equiposed in honor and dishonor, heat and cold, happiness and distress, fame and infamy, who is always free from contamination, always silent and satisfied with anything, who doesn't care for any residence, who is fixed in knowledge and engaged in devotional service, is very dear to Me.

designed by
DigitalWebdia

तात्पर्य

भक्त सदैव कुसंगति से दूर रहता है | मानव समाज का यह स्वभाव है कि कभी किसी की प्रशंसा की जाती है, तो कभी उसकी निन्दा की जाती है | लेकिन भक्ति कृत्रिम यश तथा अपयश, दुख या सुख से ऊपर उठा हुआ होता है | वह अत्यन्त धैर्यवान होता है | वह कृष्णकथा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं बोलता | अतः उसे मौनी कहा जाता है | मौनी का अर्थ यह नहीं कि वह बोले नहीं, अपितु यह कि वह अनर्गल आलाप न करे | मनुष्य को आवश्यकता पर बोलना चाहिए और भक्त के लिए सर्वाधिक अनिवार्य वाणी तो भगवान् के लिए बोलना है | भक्त समस्त परिस्थितियों में सुखी रहता है | कभी उसे स्वादिष्ट भोजन मिलता है तो कभी नहीं, किन्तु वह सन्तुष्ट रहता है | वह आवास की सुविधा की चिन्ता नहीं करता | वह कभी पेड़ के निचे रह सकता है, तो कभी अत्यन्त उच्च प्रसाद में, किन्तु वह इनमें से किसी के प्रति आसक्त नहीं रहता | वह स्थिर कहलाता है, क्योंकि वह अपने संकल्प तथा ज्ञान में दृढ़ होता है | भले ही भक्त के लक्षणों की कुछ पुनरावृत्ति हुई हो, लेकिन यह इस बात पर बल देने के लिए है कि भक्त को ये सारे गुण अर्जित करने चाहिए | सद्गुणों के बिना कोई शुद्ध भक्त नहीं बन सकता | हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणाः - जो भक्त नहीं है, उसमें सद्गुण नहीं होता | जो भक्त कहलाना चाहता है, उसे सद्गुणों का विकास करना चाहिए | यह अवश्य है कि उसे इन गुणों के लिए अलग से बाह्य प्रयास नहीं करना पड़ता, अपितु कृष्णभावनामृत तथा भक्ति में संलग्न रहने के कारण उसमें ये गुण स्वतः ही विकसित हो जाते हैं |

20.

bhaktiprasad.in

ये तु धर्मामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते |
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः|| 12.20 ||

जो इस भक्ति के अमर पथ का अनुसरण करते हैं, और जो मुझे ही अपने चरम लक्ष्य बना कर श्रद्धासहित पूर्णरूपेण संलग्न रहते हैं, वे भक्त मुझे अत्यधिक प्रिय हैं |

He who follows this imperishable path of devotional service and who completely engages himself with faith, making Me the supreme goal, is very, very dear to Me.

designed by
DigitalWebdia

तात्पर्य

इस अध्याय में दूसरे श्लोक से अन्तिम श्लोक तक - मय्यावेश्य मनो ये माम् (मुझ पर मन को स्थिर करके) से लेकर ये तु धर्मामृतम् इदम् (नित्य सेवा इस धर्म को) तक - भगवान् ने अपने पास पहुँचने की दिव्य सेवा की विधियों की व्याख्या की है | ऐसी विधियाँ उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं, और इनमें लगे हुए व्यक्तियों को वे स्वीकार कर लेते हैं | अर्जुन ने यह प्रश्न उठाया था कि जो निराकार ब्रह्म के पथ में लगा है , वह श्रेष्ठ है या जो साकार भगवान् की सेवा में | भगवान् ने इसका बहुत स्पष्ट उत्तर दिया कि आत्म-साक्षात्कार की समस्त विधियों में भगवान् की भक्ति निस्सन्देह सर्वश्रेष्ठ है | दूसरे शब्दों में, इस अध्याय में यह निर्णय दिया गया है कि सुसंगति से मनुष्य में भक्ति के प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है, जिससे वह प्रमाणिक गुरु बनाता है, और तब वह उससे श्रद्धा, आसक्ति तथा भक्ति के साथ सुनता है, कीर्तन करता है और भक्ति के विधि-विधानों का पालन करने लगता है | इस तरह वह भगवान् की दिव्य सेवा में तत्पर हो जाता है | इस अध्याय में इस मार्ग की संस्तुति की गई है | अतएव इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि भगवत्प्राप्ति के लिए भक्ति ही आत्म-साक्षात्कार का परम मार्ग है | इस अध्याय में परम सत्य की जो निराकार धारणा वर्णित है, उसकी संस्तुति उस समय तक के लिए की गई है, जब तक मनुष्य आत्म-साक्षात्कार के लिए अपने आपको समर्पित नहीं कर देता है | दूसरे शब्दों में, जब तक उसे शुद्ध भक्त की संगति करने का अवसर प्राप्त नहीं होता तभी तक निराकार की धारणा लाभप्रद हो सकती है | परम सत्य की निराकार धारणा में मनुष्य कर्मफल के बिना कर्म करता है और आत्मा तथा पदार्थ का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ध्यान करता है | यह तभी तक आवश्यक है, जब तक शुद्ध भक्त की संगति प्राप्त न हो | सौभाग्यवश यदि कोई शुद्ध भक्ति में सीधे कृष्णभावनामृत में लगना चाहता है तो उसे आत्म-साक्षात्कार के इतने सोपान पार नहीं करने होते | भगवद्गीता के बीच के छः अध्यायों में जिस प्रकार भक्ति का वर्णन हुआ है, वह अत्यन्त हृदयग्राही है | किसी को जीवन-निर्वाह के लिए वस्तुओं की चिन्ता नहीं करनी होती, क्योंकि भगवत्कृपा से सारी वस्तुएँ स्वतः सुलभ होती हैं | इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के बारहवें अध्याय 'भक्तियोग' का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ |

हरे कृष्ण

|| इस प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के बारहवें अध्याय 'भक्तियोग' का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ | ||

निताई गौर हरी बोल

DigitalWebdia